IJAER/ Jan-Feb 2023/Volume-12/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

शीत युद्ध के समय भारत – अमेरिका पर पडने वाले प्रभावो का स्वरूप : एक अध्ययन

अभिषेक खोलिया

(शोध छात्र)

रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग

ल. सि. महर रा. स्ना. महाविद्यालय

पिथौरागढ

सारांश शीत युद्ध द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के साथ–साथ उनके पश्चिमी ब्लॉक सहयोगियों के बीच भू–राजनीतिक तनाव की अवधि थी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत ने गुटनिरपेक्षता के सिद्धांत का पालन किया। इसलिए इसने किसी भी गुट में शामिल हुए बिना यूएस और यूएसएसआर दोनों के साथ मैत्रीपूर्ण साझेदारी बनाए रखी। यह शोध पत्र शीत युद्ध (Cold War) के दौर में संयुक्त राज्य अमेरिका और यूएसएसआर दोनों के साथ भारत के संबंधों पर केंद्रित है। इस शोध पत्र में शीत युद्ध यूएसए और यूएसएसआर के साथ भारत के संबंधों के बारे में मैने विस्तार से बताया गया है।

मुख्य शब्द कूटनीतिक, महाशक्तियों, सोवियत संघ, अमेरिका और सोवियत संघ आदि

प्रस्तावना शीत युद्ध का अर्थ जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि यह अस्त्र–शस्त्रों का युद्ध न होकर धमकियों तक ही सीमित युद्ध है। इस युद्ध में कोई वास्तविक युद्ध नहीं लड़ा गया। यह केवल परोक्ष युद्ध तक ही सीमित रहा। इस युद्ध में दोनों महाशक्तियों ने अपने वैचारिक मतभेद ही प्रमुख रखे। यह एक प्रकार का कूटनीतिक युद्ध था जो महाशक्तियों के संकीर्ण स्वार्थ सिद्धियों के प्रयासों पर ही आधारित रहा। शीत युद्ध एक प्रकार का वाक युद्ध जो कागज के गोलों, पत्र–पत्रिकाओं, रेडियो तथा प्रचार साधनों तक ही लड़ा गया। इस युद्ध में न तो कोई गोली चली और न कोई घायल हुआ। इसमें दोनों महाशक्तियों ने अपना सर्वस्व कायम रखने के लिए विश्व के अधिकांश हिस्सों में परोक्ष युद्ध लड़े। युद्ध को शस्त्रायुद्ध में बदलने से रोकने के सभी उपायों का भी प्रयोग किया गया, यह केवल कूटनीतिक उपायों द्वारा लड़ा जाने वाला युद्ध था जिसमें दोनों महाशक्तियां एक दूसरे को नीचा दिखाने के सभी उपायों का सहारा लेती रही। इस युद्ध का उद्देश्य अपने–अपने गुटों में मित्र राष्ट्रों को शामिल करके अपनी स्थिति मजबूत बनाना था ताकि भविष्य में प्रत्येक अपने अपने विरोधी गुट की चालों को आसानी से काट सके। यह युद्ध द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका और सोवियत संघ के मध्य पैदा हुआ अविश्वास व शंका की अन्तिम परिणति था। के.पी.एस. मैनन के अनुसार, शीत युद्ध दो विरोधी विचारधाराओं पूंजीवाद और साम्यवाद (Capitalism and Communism), दो व्यवस्थाओं बुर्जुआ लोकतन्त्र तथा सर्वहारा तानाशाही (Bourgeoise Democracy and Proletarian Dictatorship), दो गुटों नाटो और वार्सा समझौता, दो राज्यों – अमेरिका और सोवियत संघ तथा दो नेताओं जॉन फॉस्टर डलेस तथा स्टालिन के बीच युद्ध था जिसका प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शीतयुद्ध दो महाशक्तियों के मध्य एक वाक युद्ध था जो कूटनीतिक उपायों पर आधारित

था। यह दोनों महाशक्तियों के मध्य द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उत्पन्न तनाव की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति था। यह वैचारिक युद्ध होने के कारण वास्तविक युद्ध से भी अधिक भयानक था।

शीत युद्ध (Cold War) की उत्पत्ति द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, शीत युद्ध सोवियत संघ और उसकी उपग्रह सरकारों (पूर्वी यूरोपीय देशों) और अमेरिका और उसके सहयोगियों (पश्चिमी यूरोपीय देशों) के बीच भू–राजनीतिक तनाव की अवधि (1945–1991) थी। चूंकि दोनों पक्षों के बीच सीधे बड़े पैमाने पर कोई लड़ाई नहीं हुई थी, इसलिए कोल्ड नाम गढ़ा गया था। विश्व युद्ध के दौरान सहयोगी देशों (अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस) और सोवियत संघ ने धुरी शक्तियों के खिलाफ एक साथ लड़ाई लड़ी लेकिन यह गठबंधन काम नहीं आया। शीत युद्ध की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों के बीच कोई एकमत नहीं है 1941 में जब हिटलर ने रूस पर आक्रमण किया, तो संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने रूस को हथियार भेजे। ऐसा इसलिए है क्योंकि रूजवेल्ट और स्टालिन के बीच संबंध बहुत अच्छे थे। लेकिन जर्मनी की हार के बाद, जब स्टालिन पोलैंड, हंगरी, बुल्गारिया और रोमानिया में कम्युनिस्ट विचारधारा को लागू करना चाहता था, उस समय इंग्लैंड और अमेरिका को स्टालिन पर संदेह था। इंग्लैंड के प्रधान मंत्री विंस्टन चर्चिल ने 5 मार्च 1946 को अपने 'फुल्टन स्पीच' में कहा था कि सोवियत रूस एक लोहे के पर्दे से ढका हुआ था। इसने स्टालिन को गहराई से सोचने के लिए प्रेरित किया। जिसके परिणामस्वरूप सोवियत रूस और पश्चिमी देशों के बीच संदेह व्यापक हो गया और इस प्रकार शीत युद्ध ने जन्म लिया।[1] शीत युद्ध के फैलने के लिए विभिन्न कारण जिम्मेदार हैं। सबसे पहले, सोवियत रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच का अंतर शीत युद्ध का कारण बना। संयुक्त राज्य अमेरिका सोवियत रूस की कम्युनिस्ट विचारधारा को बर्दाश्त नहीं कर सका। दूसरी ओर, रूस अन्य यूरोपीय देशों पर संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रभुत्व को स्वीकार नहीं कर सका। दो महाशक्तियों के बीच आयुध की दौड़ ने शीत युद्ध के लिए एक और कारण की उत्पत्ति की थी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सोवियत रूस ने अपनी सैन्य शक्ति बढ़ा दी थी जो पश्चिमी देशों के लिए खतरा था। इसलिए अमेरिका ने एटम बम, हाइड्रोजन बम और अन्य घातक हथियारों का निर्माण शुरू किया। अन्य यूरोपीय देशों ने भी इस दौड़ में भाग लिया। इसलिए, पूरी दुनिया को दो शक्ति खंडों में विभाजित किया गया और शीत युद्ध का मार्ग प्रशस्त किया। वैचारिक अंतर शीत युद्ध का एक अन्य कारण था। जब सोवियत रूस ने साम्यवाद का प्रसार किया, उस समय अमेरिका ने पूंजीवाद का प्रचार किया। इस प्रचार ने अंततः शीत युद्ध को गति दी। रूसी घोषणा ने शीत युद्ध का एक और कारण बना दिया। सोवियत रूस ने मास–मीडिया में साम्यवाद को उजागर किया और श्रम क्रांति को प्रोत्साहित किया। दूसरी ओर, अमेरिका ने साम्यवाद के खिलाफ पूंजीपतियों की मदद की। इसलिए इसने शीत युद्ध के विकास में मदद की। शीत युद्ध के एक अन्य कारण के लिए अमेरिका का परमाणु कार्यक्रम जिम्मेदार था। हिरोशिमा और नागासाकी पर अमेरिका की बमबारी के बाद सोवियत रूस अपने अस्तित्व के लिए डर गया। तो, उसने भी अमेरिका का मुकाबला करने के लिए उसी रास्ते का अनुसरण किया। इससे शीत युद्ध का विकास हुआ। पश्चिमी देशों के खिलाफ सोवियत रूस द्वारा वीटो के प्रवर्तन ने उन्हें रूस से नफरत करने के लिए मजबूर कर दिया, जब पश्चिमी देशों ने यूएनओ की सुरक्षा परिषद में कोई विचार रखा ।सोवियत रूस ने तुरंत वीटो के जरिए इसका विरोध किया। इसलिए पश्चिमी देश सोवियत रूस से नाराज हो गए जिसने शीत युद्ध को जन्म दिया।[2]

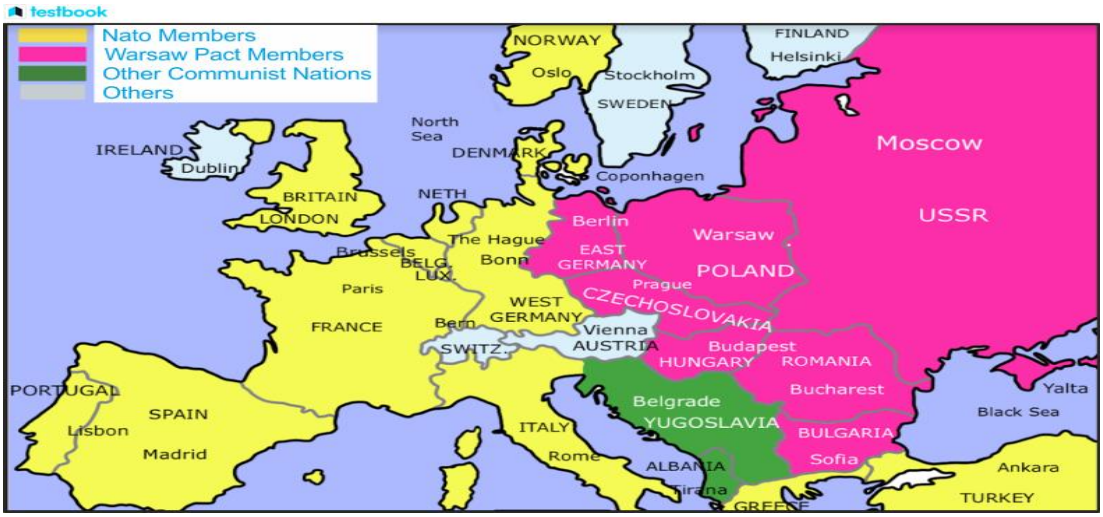

शीत युद्ध के दौरान भारत और अमेरिका शीत युद्ध के दौरान भारत और अमेरिका की स्थिति को निम्न प्रकार से समझ सकते है। भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका ने हमारी स्वतंत्रता से छह साल पहले नवंबर 1941 में राजनयिक संबंध स्थापित किए। संयुक्त राज्य अमेरिका में, भारत की स्वतंत्रता के लिए बहुत समर्थन था। हालाँकि, भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच संबंध शीत युद्ध के दौर में अपनी पूरी क्षमता के अनुरूप नहीं रहे। यह 'साम्यवाद नियंत्रण' के साथ अमेरिका की व्यस्तता के कारण था, जिसने अमेरिका और सोवियत संघ के बीच शीत युद्ध को जन्म दिया। प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने दोनों महाशक्तियों द्वारा समर्थित प्रतिस्पर्धी सैन्य गठबंधनों की शीत युद्ध की राजनीति में घसीटे जाने से इनकार कर दिया। नेहरू ने 'गुटनिरपेक्ष' सिद्धांत को चुना, जिसका उद्देश्य भारत को विदेश नीति और संबंधों में कार्रवाई की बहुत आवश्यक स्वतंत्रता प्रदान करना था। संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा सहयोग करने से भारत के इनकार को मित्रता के प्रदर्शन के रूप में देखा गया था। 1954 में, भारत–अमेरिका संबंधों को एक बड़ा झटका लगा, जब अमेरिका ने दो सैन्य संगठनों, सीटो और सेंटो का गठन किया, जिसमें पाकिस्तान इसके महत्वपूर्ण सदस्यों में से एक था। पहले की गारंटियों के बावजूद, साम्यवाद के प्रसार का मुकाबला करने के लिए भारत के खिलाफ पाकिस्तान को अमेरिकी सैन्य सहायता का उपयोग किया गया था। अक्टूबर 1962 में भारत और चीन के बीच युद्ध ने भारत–अमेरिका संबंधों में एक नया आयाम जोड़ा। जैसे ही चीन की आक्रामकता बढ़ी, भारत सरकार ने तत्काल सैन्य समर्थन की अपील वाशिंगटन (अमेरिका) से की। त्वरित प्रतिक्रिया के साथ, अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ कैनेडी ने भारत को छोटे हथियारों और उपकरणों के साथ उपलब्ध कराया। दोनों देशों के बीच समझौते पर हस्ताक्षर होने से पहले ही हथियारों की पहली खेप आ गई। इसके अलावा, संयुक्त राज्य अमेरिका रुपये में भुगतान प्राप्त करने के लिए सहमत हो गया है। संयुक्त राज्य कांग्रेस ने 1954 में सार्वजनिक कानून 480 (पीएल 480) को मंजूरी दी, जिससे अधिशेष अमेरिकी गेहूं भारत को बेचा जा सके। पीएल 480 ने भारत को 1970 के दशक की शुरुआत में अमेरिका से खाद्यान्न प्राप्त करना जारी रखने की अनुमति दी। लेकिन जब संयुक्त राज्य अमेरिका 1965 में भारत के साथ युद्ध शुरू करने के लिए पाकिस्तान को खुले तौर पर दोष नहीं देना चाहता था, तो भारत की अमेरिका समर्थक सद्भावना गायब हो गई। पाकिस्तान के लिए अमेरिकी समर्थन के अलावा, 1960 के दशक में वियतनाम के खिलाफ अमेरिकी युद्ध ने भारत–अमेरिका संबंधों में कुछ ठंडक ला दी।1970 के दशक की शुरुआत में, संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन (पाकिस्तान के समर्थन से) के बीच सुलह एक और महत्वपूर्ण मोड़ था। बांग्लादेश मुक्ति संग्राम (1971) ने भारत–अमेरिका

संबंधों में एक नया संकट पैदा कर दिया है। बांग्लादेश संघर्ष के दौरान, संयुक्त राज्य अमेरिका ने भारत को सभी आर्थिक सहायता रोक दी थी। हालांकि, लंबे अंतराल के बाद, 1978 में द्विपक्षीय समर्थन फिर से शुरू हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिका को दक्षिण एशियाई क्षेत्र में भारत को एक प्रमुख देश के रूप में मान्यता देने में कुछ समय (कुछ वर्ष) लगा। 1977 में, भारत ने मानवीय की भावना से राष्ट्रपति जिमी कार्टर की मेजबानी की। हालांकि एक और झटका लगा। 1979 में अफगानिस्तान पर सोवियत आक्रमण ने भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका को एक दूसरे के खिलाफ खड़ा कर दिया।[3]

शीत युद्ध के दौरान भारत और सोवियत संघ कई साझा कारणों ने भारत और सोवियत संघ के संबंधों को रेखांकित किया। भारत के अंग्रेजों से स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद, सोवियत संघ के साम्राज्यवाद विरोधी दर्शन की तुलना अनुकूल रूप से की गई, यही कारण है कि संदेह था और, कुछ मामलों में, भारत में सोवियत उद्देश्य के बारे में पश्चिमी–प्रेरित चिंताओं की अस्वीकृति थी। 1955 में सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के नेता की भारत यात्रा के बाद, राजनीतिक संबंधों में काफी सुधार होने लगा। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में, सोवियत संघ ने कश्मीर पर भारत की स्थिति का समर्थन किया और पश्चिमी देशों द्वारा प्रायोजित एक अलोकप्रिय प्रस्ताव को वीटो कर दिया। 1950 के दशक के अंत में सोवियत संघ ने भारत को अपनी वित्तीय और तकनीकी सहायता बढ़ा दी। फरवरी 1955 में सोवियत संघ के साथ भारत के महत्वपूर्ण समझौतों में से एक भिलाई में एक इस्पात संयंत्र स्थापित करना था। भारत को सैन्य सहायता का प्रावधान भारत–सोवियत सहयोग का एक प्रमुख प्रतीक बन गया। चीनी विरोध के बावजूद, भारत–चीन युद्ध से पहले, 1962 में मिग (लड़ाकू विमान) समझौते पर हस्ताक्षर किए गए थे। 1965 के संघर्ष के बाद, सोवियत संघ ने जनवरी 1966 में ताशकंद में भारतीय और पाकिस्तानी नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया। अगस्त 1971 में, सोवियत और भारतीय अधिकारियों ने शांति, मित्रता और सहयोग की ऐतिहासिक संधि पर हस्ताक्षर किए, जो भारत की अपनी तरह की पहली संधि थी। 1985 में मिखाइल गोर्बाचेव की सत्ता में वृद्धि ने सोवियत विदेश नीति में एक मौलिक बदलाव का संकेत दिया। अमेरिका और पश्चिम के साथ सकारात्मक संबंध बनाए रखने के महत्व पर ध्यान केंद्रित किया गया। सामान्य घर बनाने के उनके प्रयासों ने भारत जैसे विकासशील देशों के महत्व को कम कर दिया। इसके परिणामस्वरूप, और चीन के साथ सोवियत रूसी संबंध, भारत–सोवियत संबंधों में संक्षिप्त गिरावट आई।

शीत युद्ध के मुख्य परिणाम शीत युद्ध का अंतर्राष्ट्रीय मामलों में दूरगामी प्रभाव पड़ा। सबसे पहले, इसने एक भय मनोविकृति को जन्म दिया जिसके परिणामस्वरूप अधिक परिष्कृत हथियारों के निर्माण के लिए एक पागल दौड़ हुई। NATO, SEATO, WARSAW PACT, CENTOANZUS आदि जैसे विभिन्न गठबंधन विश्व तनाव को बढ़ाने के लिए ही बनाए गए थे। शीत युद्ध ने संयुक्त राष्ट्र संघ को अप्रभावी बना दिया क्योंकि दोनों महाशक्तियों ने विरोधी द्वारा प्रस्तावित कार्यों का विरोध करने की कोशिश की। कोरियाई संकट, क्यूबा मिसाइल संकट, वियतनाम युद्ध आदि इस दिशा में ज्वलंत उदाहरण थे। शीत युद्ध के कारण एक तीसरी दुनिया का निर्माण हुआ। बड़ी संख्या में अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका के देशों ने दो महाशक्तियों के सैन्य गठबंधनों से दूर रहने का फैसला किया। वे तटस्थ रहना पसंद करते थे। अतः गुटनिरपेक्ष आंदोलन शीत युद्ध का प्रत्यक्ष परिणाम बन गया। शीत युद्ध मानव जाति के खिलाफ तैयार किया गया था। हथियारों के उत्पादन में अनावश्यक खर्च ने दुनिया की प्रगति के खिलाफ एक बाधा पैदा की और एक देश पर प्रतिकूल

प्रभाव डाला और लोगों के जीवन स्तर में सुधार को रोका। शीत युद्ध ने देशों के बीच अविश्वास का माहौल बनाया। उन्होंने आपस में सवाल किया कि वे रूस या अमेरिका के अधीन कितने असुरक्षित थे। शीत युद्ध ने विश्व शांति को भंग कर दिया। गठजोड़ और प्रति–गठबंधन ने एक परेशान करने वाला माहौल बनाया। यह दुनिया के लिए एक अभिशाप था। हालाँकि रूस और अमेरिका महाशक्तियाँ होने के कारण अंतर्राष्ट्रीय संकट को हल करने के लिए आगे आए, फिर भी वे दुनिया में स्थायी शांति स्थापित करने में सक्षम नहीं हो सके।

निष्कर्ष शीत युद्ध में गुटनिरपेक्ष आंदोलन (NAM) की एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जब शीत युद्ध का उदय हुआ, तो एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों में कई नए स्वतंत्र देश थे। भारत सहित उनमें से अधिकांश संयुक्त राज्य अमेरिका या यूएसएसआर के साथ गठबंधन नहीं करना चाहते थे। इससे NAM का विकास हुआ जिसने पूरे विश्व को कवर करने के लिए शीत युद्ध के प्रसार को रोकने में एक बड़ी भूमिका निभाई। NAM नाटो जैसे सैन्य गुटों का विरोधी था। NAM देशों के प्रमुख नेता जिन्होंने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, वे थे भारत के जवाहरलाल नेहरू, इंडोनेशिया के सुकर्णो, मिस्र के जमाल अब्देल नासिर और यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति टीटो। शीत युद्ध के दौरान, भारत संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के प्रति न तो विरोधी था और न ही निष्क्रिय। NAM का संस्थापक सदस्य होने के बावजूद, भारत ने शीत युद्ध के तनाव को कम करने के लिए विश्व की घटनाओं में सक्रिय हस्तक्षेप की वकालत की। इस मामले को लेकर भारत का जवाब दोहरा थाः उसने एक तरफ दो गठबंधनों से खुद को दूर रखा, और दूसरी तरफ गठबंधन में शामिल होने वाले नव–उपनिवेशित देशों के खिलाफ आवाज उठाई। भारत ने विवादों को संघर्ष में बदलने से बचने के लिए उन्हें कम से कम करने का प्रयास किया। नेहरू, भारतीय प्रधान मंत्री, स्वतंत्र और सहकारी राज्यों के एक वास्तविक राष्ट्रमंडल में विश्वास करते थे जो संघर्ष को समाप्त नहीं तो कम करने के लिए काम करेंगे। संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के प्रति भारत के इस रुख ने विदेशी निर्णय लेने में भारत की सहायता की।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 विपिन चन्दा: विश्व का इतिहास राजकमल प्रकाशन वर्ष 2005 पृ0 67

2 मथुरालाल शर्मा: विश्व का इतिहास राजस्थानी ग्रन्थागार वर्ष 2006 पृ0 345

3 बी एल फाडियां: विश्व का इतिहास राजकमल प्रकाशन वर्ष 2010 पृ0 123